संसद पर हमला : यह गुंडों और देशद्रोहियों की भाषा नहीं

योगेंद्र यादव

13 दिसम्बर को युवाओं द्वारा लोकसभा में कूद कर विरोध प्रदर्शन नि:संदेह एक गंभीर घटना है। ऐसी गंभीर घटना हमसे गंभीरता की मांग करती है, मांग करती है गंभीर खोजबीन की, गंभीर चिंतन और मनन की। लेकिन इस घटना के बाद से मीडिया ने इसे अपराध रहस्य की जासूसी भरी खोजबीन में बदल दिया है। क्या हुआ और कैसे हुआ, में सबकी दिलचस्पी है लेकिन क्यों हुआ इसकी गहरी पड़ताल करने को हम तैयार नहीं हैं। टी.वी. चैनल देश को 'मारो मारो' वाली उन्मादी भीड़ में बदलना चाहते हैं। सरकार और सुरक्षा एजेंसियां अपनी कमजोरी पर पर्दा डालना चाहती हैं। विपक्ष इस बहाने सरकार को घेरना चाहता है।

गंभीर चिंतन और मनन कोई नहीं चाहता। आखिर संसद में कूदने वाले ये युवजन कौन हैं? वे क्या मुद्दे उठाना चाहते थे? उन्होंने ऐसा जोखिम भरा कदम क्यों उठाया? लोकतंत्र में अपनी आवाज उठाने के बाकी सब तरीकों में उन्हें भरोसा क्यों नहीं था? जब तक हम इन सवालों का सामना नहीं करते तब तक हम संसद भवन को सुरक्षित भले ही कर लें, लेकिन देश के भविष्य को सुरक्षित नहीं कर सकते। अब तक पुलिस ने इस घटना में शामिल सभी 6 युवाओं को गिरफ्तार कर लिया

है। एक बात तो साफ है इनमें से कोई भी पेशेवर अपराधी या गुंडा नहीं है। ये सभी देश के अलग-अलग राज्यों से आए सामान्य निम्न मध्यम वर्ग के परिवारों के बेचैन युवा हैं। बेचैनी में सामाजिक और राजनीतिक के साथ-साथ कुछ व्यक्तिगत निराशा का अंश भी है। किसी के बारे में इससे पहले किसी आपराधिक गतिविधि में शामिल होने की कोई खबर नहीं है।

यह भी साफ है कि उनका इरादा संसद में घुसकर हिंसा करने या जान-माल का नुकसान करने का नहीं था। चाहते तो कर सकते थे। जहां छुपा कर धुएं के कनस्तर ले जा सकते थे तो कुछ और घातक सामग्री भी ले जा सकते थे। उन्होंने ऐसा नहीं किया। लोकसभा में घुसकर किसी पर हमला नहीं किया, खुद पिटे जरूर लेकिन जवाबी वार नहीं किया। पुलिस की तफ्तीश बताती है कि पहले उनका इरादा संसद में आत्मदाह करने का था, जो उन्होंने रद्द कर दिया। वे अपने साथ 'लापता प्रधानमंत्री' वाले मजमून के पर्चे भी लाए थे, जो बांट नहीं सके। जो भी हो, वे आतंक फैलाना नहीं चाहते थे। उन्हें आतंकवादी करार नहीं दिया जा सकता।

जाहिर है ये युवा इतने नादान नहीं हैं कि इन्हें यह पता ही न हो कि संसद में या उसके बाहर पकड़े जाने पर उनके साथ क्या कुछ होगा। वे जानते होंगे कि उन्हें यातना मिलेगी, घर के लोगों को प्रताडऩा मिलेगी, लंबी जेल मिलेगी, इससे भी बड़ी सजा हो सकती है। यह उंगली कटा कर शहीद बनने और उसके बल पर राजनीतिक करियर बनाने का स्टंट भी नहीं लगता। कम से कम उनकी अपनी नजर में वे सब देश हित में एक बड़े काम के लिए अपनी आहुति दे रहे थे। उनके विचारों का अनुमान सागर शर्मा की डायरी में लिखी पंक्तियों से लगाया जा सकता है : 'ऐसा नहीं है कि मेरे लिए संघर्ष की राह चुनना आसान रहा। हर पल उम्मीद लगाए मैंने 5 साल प्रतीक्षा की है कि ऐसा दिन आएगा जब मैं अपने कत्र्तव्य की ओर बढ़ूंगा। दुनिया में ताकतवर व्यक्ति वह नहीं होता जो छीनना जानता है, ताकतवर व्यक्ति वह है जो हर सुख त्यागने की क्षमता रखता है।' यह गुंडों और देशद्रोहियों की भाषा नहीं हो सकती। इतने भर से इन युवाओं को भगत सिंह या बटुकेश्वर दत्त के समक्ष खड़ा नहीं किया जा सकता।

भगत सिंह सिर्फ सैंट्रल असैंबली में बम फैंकने और पर्चे बांटने भर से शहीद-ए-आजम नहीं बन गए थे। उसके पहले क्रांतिकारिता का अतीत था, विचारों की गहराई थी और फांसी के तख्ते पर झूलने तक त्याग, बलिदान और संकल्प था। अभी इन युवाओं के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। लेकिन इतना तो कहा जा सकता है कि उनके कृत्य को अपराध या आतंक की श्रेणी में नहीं बल्कि राजनीतिक प्रतिरोध की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। हम उनके तरीके से असहमत हो सकते हैं। जाहिर है संसद में कूद कर उसकी कार्रवाई को भंग करने का महिमा मंडन नहीं किया जा सकता।

लेकिन हमारी इतनी जिम्मेवारी जरूर बनती है कि प्रतिरोध के इस स्वर को अपराध, आतंक या देशद्रोह बताकर इसे अनसुना न करें, हम उसका संदेश जरूर सुनें।

उनका संदेश क्या है, इसमें कोई शक नहीं है। यह साफ है कि वे बेरोजगारी के सवाल पर देश का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि बेरोजगारी केवल उन लोगों या छोटे समूह की समस्या नहीं है, यह आज देश के युवाओं के सामने सबसे बड़ा संकट है, देश के भविष्य पर सबसे बड़ा सवालिया निशान है। उसके अलावा उन्होंने मणिपुर का सवाल उठाया, महिला पहलवानों के साथ हुए दुर्व्यवहार को दर्ज किया और तानाशाही के खिलाफ नारे लगाए।

जाहिर है उन्हें महसूस होता है कि देश में तानाशाही इस कदर चुपचाप पसर गई है कि इन सवालों को सामान्य लोकतांत्रिक तरीके से व्यक्त करने की जगह नहीं बची है। उन्हें जरूर महसूस हुआ होगा कि मीडिया के जरिए अपना संदेश पहुंचाना या लोकतांत्रिक धरने प्रदर्शन के माध्यम से अपनी आवाज उठाने का कोई मतलब नहीं बचा है। उनका यह मूल्यांकन गलत हो सकता है। लेकिन अगर आदर्शवादी, विचारवान और निडर युवाओं का छोटा-सा वर्ग भी ऐसा सोचता है तो यह पूरे देश के लिए खतरे की घंटी है। इतिहास गवाह है कि ऐसी आवाज को नजरअंदाज करने का अंजाम अच्छा नहीं होता है।